जैन मूर्तिशास्त्र

(मध्यप्रदेश की जैन मूर्तिकला के सन्दर्भ में)

प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी

भारतीय स्थापत्य या भवन निर्माण कला का ऐतिहासिक विवेचन करने से ज्ञात होता है कि जैन देवालयों का निर्माण मौर्य-शासनकाल में होने लगा था। बिहार में गया के समीप बराबर नामक पर्वत गुफाओं में कई शिलालेख मिले हैं। उनसे ज्ञात हुआ है कि मौर्य सम्राट अशोक ने आजीविक नामक एक संप्रदाय के सन्यासियों के निवास के लिए पहाड़ की चट्टानों को काटकर शैल-गृहों का निर्माण कराया। उसके वंशज दशरथ नामक शासक ने भी इस कार्य को आगे बढ़ाया। आजीविक संप्रदाय के प्रारंभकर्त्ता आचार्य को तीर्थंकर महावीर का समकालीन माना जाता है। बराबर की पहाड़ी से कुछ दूर नागार्जुनी नामक पहाड़ी है। वहाँ भी मौर्यकाल में साधुओं के निवास के लिए कई शैल-गृह बनवाए गए। भारतीय साहित्य में पर्ण-शालाओं के उल्लेख मिलते हैं। भूमि में मोटी लकड़ी के बड़े टुकड़ों को गाडकर उन पर पत्ते छा दिए जाते थे। इस प्रकार पत्ते की कुटियाँ या पर्णशालाएँ बनायी जाती थीं। उन्हीं के ढंग पर शैल-गृहों का निर्माण किया गया। जैन साधुओं के लिए शैल-गृह बनाने के कई उदाहरण तामिलनाडु में भी मिले हैं।

ईसवी पूर्व दूसरी और पहली शती में उडीसा तथा पश्चिमी भारत में पर्वतों को काटकर देवालय बनाने की परंपरा विकसित हुई। उडीसा के भुवनेश्वर के समीप कई बडी गुफाएँ पत्थर की चट्टानों को काटकर बनायी गयीं। वहाँ खण्डगिरि तथा उदयगिरि नामक जैन गुफाऐं बहुत प्रसिद्ध हैं। तीसरी गुफा का नाम हाथीगुफा है। उसमें कलिंग के जैन शासक खारवेल का एक शिलालेख खुदा हुआ है। लेख से ज्ञात हुआ है कि ईसवी पूर्व चौथी शती में मगध के राजा महापद्मनन्द तीर्थंकर की एक मूर्ति कलिंग से अपनी राजधानी पाटिलपुत्र उठा ले गए थे। खारवेल ईसवी पूर्व दूसरी शती के मध्य में उस प्रतिमा को मगध से अपने राज्य में लौटा लाए और उसे उन्होंने अपने मुख्य नगर में प्रतिष्ठापित किया।

इस शिलालेख से पता चलता है कि तीर्थंकर मूर्तियों का निर्माण नन्दराज महापद्मनन्द के कुछ पहले प्रारम्भ हो चुका था। जैन साहित्यिक अनुश्रुति से भी पता चलता है कि चन्दन की तीर्थंकर मूर्तियाँ भगवान् महावीर के समय से या उनके निर्वाण के पश्चात् ही बनने लगी थीं।

उत्तर भारत में जैन कला के जितने केन्द्र थे उनमें मथुरा का स्थान महत्वपूर्ण है। ईसवी पूर्व दूसरी शती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से लेकर ईसवी बारहवीं शती तक के दीर्घकाल में मथुरा में जैन धर्म का विकास होता रहा। यहाँ के चित्तीदार लाल बलुए पत्थर की बनी हुई कई हजार जैन कला-कृतियाँ अब तक मथुरा और उसके आसपास के जिलों से प्राप्त हो चुकी हैं। उनमें तीर्थंकर आदि प्रतिमाओं के अतिरिक्त चौकोर आयागपट्ट विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन पर प्रायः बीच में तीर्थंकर मूर्ति तथा उसके चारों ओर विविध प्रकार के मनोहर अलंकरण मिलते हैं। स्वस्तिक, नन्दयावर्त, वर्धमानक्य, श्रीवत्स, भद्रासन, दर्पण, कलश और मीन युगल—इन अष्टमंगल द्रव्यों का आयागपट्टों पर सुन्दरता के साथ चित्रण किया गया है। एक आयागपट्ट पर क्षाठ दिवकुमारियाँ एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए आकर्षक ढंग से मंडल नृत्य में संलग्न दिखाई गई हैं। मण्डल या 'चक्रवाल' अभिनय का उल्लेख 'रायपलेनिय सूत्र' नामक जैन ग्रंथ में भी मिलता है। एक दूसरे आयागपट्ट पर तोरण द्वार तथा वेदिका का अत्यन्त सुन्दर अंकन है। वास्तव में ये आयागपट्ट प्राचीन जैन कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें से अधिकांश अभिलिखित हैं, जिन पर ब्राह्मीलिपि में लगभग ई. पू. एक सौ से लेकर ईसवी प्रथम शती के मध्य तक के लेख हैं। मथुरा की जैन कला का प्रभाव मध्यप्रदेश में विदिशा, तुमैन आदि स्थानों की कला पर पड़ा।

पश्चिमी भारत, मध्य भारत तथा दक्षिण में पर्वतों को काटकर जैन देवालय बनाने की परंपरा दीर्घकाल तक मिलती है। विदिशा के समीप उदयगिरि की पहाड़ी में दो जैन गुफाएँ हैं। वहाँ संख्या एक की गुफा में गुप्तकालीन जैन मन्दिर के अवशेष उपलब्ध हैं। उदयगिरि की संख्या 20 वाली गुफा भी जैन मंदिर है। उसमें गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम के समय में निर्मित कलापूर्ण तीर्थंकर प्रतिमा मिली है।

जैन मंदिर-स्थापत्य का दूसरा रूप भूमिज मन्दिरों में मिलता है। इन मंदिरों का निर्माण प्रायः समतल भूमि पर पत्थर और ईंटों द्वारा किया जाता था। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, बंगाल और मध्यप्रदेश में समतल भूमि पर बनाए गए जैन मंदिरों की संख्या बहुत बड़ी है। कभी-कभी ये मंदिर जैन स्तूपों के साथ बनाए जाते थे।

जैन स्तूपों के संबंध में प्रचुर साहित्यिक तथा अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध हैं। उनसे ज्ञात होता है अनेक प्राचीन स्थलों पर उनका निर्माण हुआ। मथुरा, कौशांबी आदि कई स्थानों में प्राचीन जैन स्तूपों के भी अवशेष मिले हैं। उनसे यह बात स्पष्ट है कि इन स्तूपों का निर्माण ईसवी पूर्व दूसरी शती से व्यवस्थित रूप में होने लगा था। प्रारंभिक स्तूप अर्धवृत्ताकार होते थे। उनके चारों ओर पत्थर का बाड़ा बनाया जाता था। उसे 'वेदिका' कहते थे। वेदिका के स्तंभों पर आकर्षक मुद्राओं में स्त्रियों की मूर्तियों को विशेष रूप से अंकित करना प्रशस्त माना जाता था। गुप्त काल से जैन स्तूपों का आकार लंबोतरा होता गया। बौद्ध स्तूपों की तरह जैन स्तूप भी परवर्ती काल में अधिक ऊँचे आकार के बनाए जाने लगे।

मध्य काल में जैन मंदिरों का निर्माण व्यापक रूप में होने लगा। भारत के सभी भागों में विविध प्रतिमाओं से अलंकृत जैन मंदिरों का निर्माण हुआ। इस कार्य में विभिन्न राजवंशों के अतिरिक्त व्यापारी वर्ग तथा जन-साधारण ने भी प्रभूत योग दिया।

चन्देलों के समय में खजुराहो में निर्मित जैन मंदिर प्रसिद्ध हैं। इन मंदिरों के बहिर्भाग खजुराहो की विशिष्ट शैली में उकेरे गए हैं। मंदिरों के बाहरी भागों पर समानांतर अलंकरण पट्टिकाएँ उत्खचित हैं। उनमें देवी-देवताओं तथा मानव और प्रकृतिजगत को अत्यन्त सजीवता के साथ आलेखित किया गया है। खजुराहो के जैन मंदिरों में पार्श्वनाथ मंदिर अत्यधिक विशाल है। उसकी ऊंचाई 68 फुट है। मंदिर के भीतर का भाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महामण्डप, अन्तराल तथा गर्भगृह—इन तीन मुख्य भागों में विभक्त है। उनके चारों ओर प्रदक्षिणा मार्ग है। इस मंदिर की छत का कटाव विशेष कलात्मक है और खजुराहो के स्थापत्य विशेषज्ञों की दक्षता का परिचायक है। मंदिर के प्रवेश-द्वार पर गरुड़ पर दसभुजी जैन देवी आरूढ़ है। गर्भगृह की द्वारशाखा पर पद्मासन तथा खड्गासन में तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ उकेरी गई हैं। खजुराहो के इन मंदिरों में विविध आकर्षक मुद्राओं में सुरसुंदरियों या अप्सराओं की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इन मूर्तियों में देवांगनाओं के अंग-प्रत्यंगों के चारुविन्यास तथा उनकी भावभंगिमाएँ विशेष रूप से दर्शनीय हैं। खजुराहो का दूसरा मुख्य जैन मंदिर आदिनाथ का है। इसका स्थापत्य पार्श्वनाथ मंदिर के समान है।

विदिशा जिले के ग्यारसपुर नामक स्थान में माला-देवी का मंदिर है। उसके बहिर्भाग की सज्जा तथा गर्भगृह की विशाल प्रतिमाएँ कलात्मक अभिरुचि की द्योतक है। मध्य भारत में मध्यकाल में ग्वालियर, देवगढ़, चन्देरी, अजयगढ़, अहार आदि स्थानों में स्थापत्य तथा मूर्तिकला का प्रचुर विकास हुआ।

जैन स्थापत्य तथा मूर्तिकला का प्राचुर्य 'देवालय-नगरों' में देखने को मिलता है। ऐसे स्थलों पर सैकड़ों मंदिर पास-पास बने हुए हैं। मध्यप्रदेश में पपौरा, अहार, थूबोन, कुण्डलपुर, सोनागिरि आदि अनेक स्थलों पर जैन मंदिर-नगर निर्मित हुए। ऐसे मंदिर-नगरों के लिए पर्वत शृंखलाएँ विशेष रूप से चुनी गयीं।

भारत के अनेक राजवंशों ने जैन-कला की उन्नति में योग दिया। गुप्त शासकों के बाद चालुक्य, राष्ट्रकूट, कलचुरि, गंग, कदम्ब चोल तथा पांड्य वंश के अनेक राजाओं ने जैन-कला को संरक्षण तथा प्रोत्साहन दिया। इन वंशों के कई राजा जैन धर्मानुयायी थे। इनमें सिद्ध-राज जयसिंह, कुमारपाल, अमोघ वर्ष, अकालवर्ष तथा गंगवंशी मारसिंह द्वितीय के नाम उल्लेखनीय हैं। इन शासकों को जैन धर्म की ओर प्रवृत्त करने का श्रेय स्वनामधन्य हेमचन्द्र, जिनसेन, गुणभद्र, कुन्दकुन्द आदि जैन आचार्यों को है। राज्य-संरक्षण प्राप्त होने एवं विद्वान आचार्यों द्वारा धार्मिक प्रचार में क्रियात्मक योग देने पर जैन साहित्य तथा कला की बड़ी उन्नति हुई। मध्यकाल में अठारहवीं शती के अन्त तक प्रायः समस्त भारत में जैन मंदिरों एवं प्रतिमाओं का निर्माण जारी रहा। सामाजिक-धार्मिक इतिहास की जानकारी के लिए यह सामग्री महत्त्व की है।

□ □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org